RNI No. 26281/74 रजि. नं. पी.बी./जे.एल-011/2018-20

ओ३म्
कृण्वन्तो विश्वमार्यम्
साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र

वर्षः 75, अंक : 11 एक प्रति 2 : रुपये
रविवार 27 मई, 2018
विक्रमी सम्वत् 2075, सृष्टि सम्वत् 1960853119
दयानन्दाब्द : 194 वार्षिक शुल्क : 100 रुपये
आजीवन शुल्क : 1000 रुपये
दूरभाष : 0181-2292926, 5062726
E-mail: apspunjab2010@gmail.com,
www.aryapratinidhisabha.org

POSTAGE PRE-PAID MAIL BUSINESS CENTRE 24 MAY 2018 JALANDHAR CITY

वर्ष-75, अंक : 11, 24-27 मई 2018 तदनुसार 14 ज्येष्ठ सम्वत् 2075 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

पापादि नाशोपाय

ले०-स्वामी वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ

ईजे यज्ञेभिः शशमे शमीभिर्ऋधद्वारायाग्रये ददाश।
एवा चन तं यशसामजुष्टिर्नांहो मर्तं नशते न प्रदृप्तिः।।

-ऋ. ६।३।२

शब्दार्थ-जो **यज्ञेभिः** = यज्ञों से **ईजे** = यज्ञ करता है **शमीभिः** = शान्ति की क्रियाओं से **शशमे** = शान्त होता है **ऋधद्वाराय** = प्रशंसनीय सर्वश्रेष्ठ **अग्रये** = अग्रणी ज्ञानी को **ददाश** = दान देता है **एवा+चन** = इस प्रकार के **तम्** = उस **मर्तम्** = मनुष्य को **न** = न तो **यशसाम्** = यशों की **अजुष्टिः** = अप्रीति, असेवा, अभाव और **न** = ना ही **अंहः** = कुटिलता, दोष, पाप और **न** = ना ही **प्रदृप्तिः** = दर्प=घमण्ड=अहङ्कार **नशते** = प्राप्त होता है।

व्याख्या-पाप-नाश के कुछ-एक उपाय इस मन्त्र में उल्लिखित हुए हैं। सबसे पहला है-**'ईजे यज्ञेभिः'**-यज्ञों के द्वारा यज्ञ करता है। यज्ञ का अर्थ है देवपूजा, संगतीकरण और दान। जो विद्वानों और भगवान् का सत्कार तथा आराधन करता है, जो भले पुरुषों की सङ्गति करता है, जो दान देता है, उससे पाप लेश भी नहीं होना चाहिए। यज्ञ का वेद में बहुत माहात्म्य है-

यस्ते यज्ञेन समिधा य उक्थैरर्केभिः सूनो सहसो ददाशत्।
स मर्त्येष्वमृत प्रचेता राया द्युम्नेन श्रवसा वि भाति।।

-ऋ० ६।५।५

जो यज्ञ के द्वारा, समिधा के द्वारा = ज्ञानदीप्ति के द्वारा, उत्तम वचनों के द्वारा तथा आराधानाओं के द्वारा, हे बलियों को झुका देने वाले! तेरा प्रकाश प्राप्त करने के लिए देता है, वह प्रचेता, उत्तम ज्ञानी मानो मृतकों में अमृत है, वह धन से, कान्ति से तथा यश से विशेष चमकता है।

धन, यश, तेज सभी पुण्य के फल हैं। पापी को यह सामग्री कहाँ मिल सकती है? यज्ञ द्वारा दान देने से यह सब मिलती है। मूल में **'ईजे यज्ञेभिः'** [यज्ञों के द्वारा यज्ञ करता है] पाठ है, केवल **'ईजे'** नहीं है। **'यज्ञेभिः'** = साथ लगाने का भाव यह है कि यज्ञ यज्ञ की भावना से किया जाए, आडम्बर और दिखावे के भाव से नहीं। तभी यजुर्वेद में आदेश है-**'यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्'**-यज्ञ यज्ञ से सफल हो।

त्याग का भी त्याग आर्य-जीवन का चरम ध्येय है-शान्ति की परम अवस्था है। तभी वेद में कहा-**'तव क्रतुभिरमृतत्वमायन्'** [ऋ० ६।७।४]= तेरे यज्ञों से महात्मा मोक्ष प्राप्त करते हैं। इस प्रकार के याज्ञिक, शान्त तथा दाता महापुरुष की अकीर्त्ति नहीं होती, क्योंकि वह कोई निन्दित या निन्दनीय कार्य करता ही नहीं। न उसे पाप-भावना घेरती है। यज्ञों में तो वाणी भी देवी= वैष्णवी बोलनी होती है। पाप के विचार से यज्ञ का संहार हो जाता है। पाप का मूल अभिमान है, निरन्तर आत्मसमर्पण करने, भगवद्गुण-चिन्तन करने से अपनी अल्पज्ञता का भान होने के कारण उसमें अभिमान प्रवेश भी नहीं करता।

(स्वाध्याय संदोह से साभार)

आगामी आर्य महासम्मेलन बरनाला में

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (रजि.), गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा जालन्धर के तत्वावधान में आगामी आर्य महासम्मेलन **11 नवम्बर 2018** को बरनाला में आयोजित किया जा रहा है। इसलिये पंजाब की समस्त आर्य समाजों से निवेदन है कि वह इन तिथियों में अपनी अपनी आर्य समाज का कोई कार्यक्रम न रखें और इस आर्य महासम्मेलन को सफल बनाने के लिये पूरी शक्ति से जुट जाएं। आपके सहयोग से इससे पूर्व 17 फरवरी 2017 को लुधियाना और 5 नवम्बर 2017 को नवांशहर में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब सफल आर्य महासम्मेलन कर चुकी है। आशा है इस आर्य महासम्मेलन में भी आप का पूरा पूरा सहयोग मिलेगा।

प्रेम भारद्वाज
सभा महामंत्री

इन्द्रं परेऽवरे मध्यमास इन्द्रं यान्तोऽवसितास इन्द्रम्।
इन्द्रं क्षियन्त उत युध्यमाना इन्द्रं नरो वाजयन्तो हवन्ते।।

-ऋ० ४.२५.८

भावार्थ-संसार में उच्च कोटि के, नीच कोटि के और मध्यम कोटि के सब मनुष्य, उस सर्वशक्तिमान् जगदीश की प्रार्थना करते हैं तथा मार्ग में चलने वाले और अपने-अपने कर्त्तव्य कर्मों में लगे हुए, अपने घरों में निवास करते हुए उस जगत्पति को बुलाते हैं। युद्ध करने वाले वीर पुरुष भी, अपनी विजय चाहते हुए, उस प्रभु को स्मरण करते और बुलाते हैं। किंबहुना संसार में धान्य बलादि की इच्छा करने वाले सब नर-नारी, उस परम पिता के आगे प्रार्थना करते हैं। परमात्मा सब की पुकार सुनते और उनकी यथायोग्य कामनाओं को पूरा भी करते हैं।

त्वं सोमासि सत्पतिस्त्वं राजोत वृत्रहा।
त्वं भद्रो असि क्रतुः।।

-ऋ० १.९१.५

भावार्थ-हे सकल ब्रह्माण्डों के उत्पन्न करने वाले, सत्कर्मों में प्रेरक और शान्ति देने वाले सोम परमात्मन्! आप श्रेष्ठ पुरुषों के पालन करने वाले, सब चर और अचर जगत् के राजा और मेघों के उत्पादक धारक और मारक हो। आप कल्याणस्वरूप, अपने भक्तों का कल्याण करने वाले और सारे जगत् के उत्पन्न करने वाले हो।

जीव का ईश्वर से सम्बन्ध

ले.-डॉ. रघुवीर वेदालंकार आचार्य श्रीमद्दयानन्द आर्ष गुरुकुल तेजल हेड़ा, मुजफ्फरनगर

वर्तमान अर्थ में प्रयुक्त ईश्वर शब्द वेदों में नहीं है। वहाँ ब्रह्म पद है। ब्रह्म का एक अर्थ बड़ा = महान भी है। परमेश्वर अपने कार्यों से सर्वतो महान् है। उपनिषदों में भी अधिकतर ब्रह्म पद ही प्रयुक्त है। भगवद्गीता तथा योगदर्शन में ईश्वर का प्रयोग इसी अर्थ में किया गया है। ईश्वर के नामों की व्याख्या महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में कर दी है। वेदों में वह अनेक रूपों में वर्णित है। इसे अप्राप्य तथा अदर्शनीय भी कहा गया है। अमूर्त निराकार होने से वह दर्शनीय तो अवश्य है किन्तु अप्राप्त नहीं, क्योंकि सर्वव्यापक होने से वह सर्वदा सर्वत्र विद्यमान है। अत: ईश्वर प्राप्ति की बात समझ में नहीं आती। जो सर्वदा प्राप्त है, वह अप्राप्त कैसे? इसका समाधान है कि ईश्वर सर्वत्र सर्वदा विद्यमान तो है, किन्तु उसकी अनुभूति नहीं। अनुभूति न होना ही अप्राप्ति तथा अनुभूति होनी ही प्राप्ति है। भर्तृहरि ने इस विषय में बहुत ही अच्छा लिखा है-

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नानन्तचिन्मात्रमूर्तये।
स्वानुभूत्यैकमानाय नम: शान्ताय तेजसे।।

अर्थात् वह परमेश्वर दिशा-काल आदि से परे, अनन्त चिन्मात्र है।

ऋग्वेद के कई मन्त्रों में परमेश्वर के कार्यों का वर्णन करके अन्त में कहा गया है-तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नम:। उस महान ब्रह्म को प्रणाम हो, जिसने इतने विशाल पर्वत, इतने गहरे सागर तथा अनवरत बहने वाली नदियाँ बनायी। जो भूत तथा भविष्यत् सभी का अधिष्ठाता है, इसलिए वह ब्रह्म है। उसकी सत्ता में क्या प्रमाण है? भर्तृहरि कहते हैं-स्वानुभूति एकमानाय। उपासक की अपनी अनुभूति ही ईश्वर की सत्ता में प्रमाण है। बस, यही है ईश्वर की प्राप्ति। इस विशाल तथा जटिल ब्रह्माण्ड को देखकर भी वैज्ञानिक तथा नास्तिक कह देते हैं कि यह अपने आप बन गया। इसके लिए किसी निर्माता ईश्वर की आवश्यकता नहीं, किन्तु अनुभूति का निषेध कौन कर पायेगा? हाँ, यह अवश्य है कि यह अनुभूति सबको नहीं होगी, अपितु उसे ही होगी जिसने अपने आपको, अपने मन को इसका पात्र बना लिया है। किसी भी पदार्थ की सभी को सर्वदा समान रूप से अनुभूति नहीं हो सकती। एक मूर्च्छित या बेहोश शराबी व्यक्ति को धूप में पड़े रहने पर भी उसको अनुभूति नहीं होती। यही अवस्था हमारी है। किसी कवि ने कहा है-

पीत्वा मोहमयीं प्रसादमदिरा-मुन्मत्तभूतं जगत्। अर्थात् मोह रूपी मदिरा को पीकर यह संसार उसी प्रकार उन्मत्त = पागल हो रहा है, जिस प्रकार मदिरा = शराब को पीकर उन्मत्त हो जाते हैं। मोह का अर्थ राग है। जिसके द्वारा रंगा जाए, उसे राग = रंग कहते हैं। हमारा अन्त:करण भी सांसारिक पदार्थो, धन ऐश्वर्य तथा सम्बन्धियों के प्रेम में, आसक्ति में इतना रंग जाता है कि इनके अलावा कुछ भी दिखलायी नहीं देता। यही हमारी उन्मत्ता है। कार्य तो हम सभी कर रहे हैं, किन्तु उसी प्रकार कि जैसे एक मद्यप व्यक्ति उछलता-कूदता और अनाप-शनाप बकता तथा कहीं भी पड़ा रहता है। यही अवस्था हमारी है। हम भी सभी सांसारिक कार्य कर तो रहे हैं, किन्तु उसी उन्मत्त अवस्था में मोह से रंगे हुए मन से कर रहे हैं। ऐसे में परमेश्वर की अनुभूति कैसे हो सकती है? इन्हीं राग-द्वेष के रंग में रंगी हुयी सहस्त्रों इच्छाएं हमारे मन में भरी हुयी है। ऐसा मन ईश्वर की अनुभूति नहीं कर सकता। कहा भी है-

जब शत सहस्त्र इच्छाओं से हृदय कलुषित होवे।
तब कहाँ प्रभु की ज्योति से अन्तस् आलोकित होवे।।

परमेश्वर की अनुभूति करने के लिए उससे सम्पर्क साधने के लिए इन इच्छाओं को मन से बाहर करना ही होगा। मन से इनके प्रति राग को समाप्त करना ही होगा। राग नहीं होगा तो क्या स्थिति होगी? वैराग्य। वि+राग। अर्थात् समाप्त हो गया है राग जहाँ से। विराग का भाव ही वैराग्य है। वैराग्य का यह अर्थ लोक में भी सुप्रसिद्ध है कि सांसारिक पदार्थों के प्रति आकर्षण न हो। योग दर्शन में चित्तवृत्तियों को रोकने तथा मन: शुद्धि के दो ही उपाय बतलाए गये हैं-अभ्यास और वैराग्य। दोनों का परस्पर प्रगाढ़ सम्बन्ध है। वैराग्य को स्थिर रखने के लिए सतत अभ्यास आवश्यक है। अन्यथा किसी महान् कष्ट में, प्रियजन की मृत्यु आदि पर क्षणिक वैराग्य तो सभी को ही हो जाता है। योग दर्शन के भाष्य में व्यास जी लिखते हैं-

वैराग्येण विषयस्रोत: खिली क्रियते। अर्थात् वैराग्य के द्वारा विषयों की ओर प्रवाहित होने वाला मन का स्रोत समाप्त किया जाता है। राग के कारण ही तो मन सांसारिक पदार्थों भोग-ऐश्वर्य की ओर भाग रहा था। राग ही नहीं रहा तो विषय स्रोत भी स्वत: ही समाप्त हो गया। ऐसे वैराग्य पूर्ण मन में ही परमेश्वर की अनुभूति हो सकती है, रागयुक्त में नहीं।

अनुभूति के भी दो स्तर हैं-

1. सर्वदा प्रतिक्षण हमें परमेश्वर की अनुभूति होती रहे।

2. समय-समय पर कभी-कभी अनुभूति हो। इन दोनों के उपाय भी अलग-अलग हैं। इनमें एक उपाय यौगिक-योग सम्बन्धी है तथा दूसरा लौकिक। यौगिक उपाय योगदर्शन के आठ अंगों में समाहित है। इस प्रक्रिया के द्वारा मन को पूर्ण शुद्ध, रागरहित करके समाधि के योग्य बनाया जाता है। समाधि में ही उपासक को आत्मानुभूति तथा परमेश्वरानुभूति होती है। इन्हें ही आत्मदर्शन तथा परमेश्वर दर्शन या इनकी प्राप्ति भी कहा जा सकता है। यद्यपि प्रत्यक्ष रूप में योगदर्शन का लक्ष्य ईश्वर दर्शन या प्राप्ति नहीं है। वह तो केवल स्वरूप-अवस्थिति की बात करता है तथा ईश्वर प्रणिधान को समाधि सिद्धि में सहायक कहता है। ईश्वर प्रणिधान का अर्थ है। अपने सभी कार्यों को भगवदर्पण कर देना। अपनी कोई भी इच्छा शेष न रखना। ऐसे व्यक्ति की समाधि सिद्ध होगी तथा उसे ईश्वरीय अनुभूति भी होगी। यह यौगिक मार्ग है। है बहुत कठिन। परमेश्वर की अनुभूति का एक अन्य सरल मार्ग भी है, वह है परमेश्वर के साथ तादात्म्य स्थापित करना। उसके् साथ घरेलू सम्बन्ध स्थापित करना। यद्यपि यह मार्ग भी कठिन तो इसलिए है कि अपने लौकिक प्रत्यक्ष सम्बन्धियों को छोड़कर परमेश्वर को उनके स्थान पर सभी जन नहीं बैठा सकते। यह मार्ग वेदोक्त है। अत: इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि हम परमेश्वर के साथ लौकिक मनुष्यों के समान सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं। नीचे इस विषय को प्रमाणों से पुष्ट किया जाता है-

1. माता-पिता-नवजात बच्चे का सर्वप्रथम सम्पर्क उसके माता-पिता से ही होता है। इनमें भी माँ प्रथम है। वेद परमेश्वर के विषय में कह रहा है-

त्वं हि न: पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ।

हे अनन्त कर्मकर्ता, अनन्तप्रज्ञ परमेश्वर! तू ही हमारी माता है तथा तू ही पिता है। वेद ऐसा क्यों कह रहा है? जन्म के माता-पिता तो कुछ अंश तक केवल निमित्त मात्र हैं। पिता ने अपने शरीर के सारभूत द्रव्य से गर्भाधान किया तथा माता ने उसे अपने शरीर से बढ़ाया, जन्म दिया। इसमें परमेश्वर ने क्या किया? इसका उत्तर अथर्ववेद दे रहा है कि उस भ्रूण में प्राणों का संचार किसने किया? उसके नेत्रों में ज्योति किसने दी तथा भ्रूण को जीव से संयुक्त किसने किया? माता-पिता की शक्ति इन कार्यों को करने की नहीं है। यदि ऐसा होता तो अन्धे तथा प्राणहीन शिशु उत्पन्न न होते। कोई भी माता-पिता ऐसे बच्चे की कामना नहीं करेगा। इसलिए परमेश्वर ही वास्तव में हमारा जन्मदाता है, माता-पिता तो निमित्त मात्र हैं। क्या हमने कभी परमेश्वर से इतना प्रेम, उसके ऊपर इतनी श्रद्धा भक्ति भी है, जितना माता-पिता के साथ करते है? यदि नहीं, तो उसके साथ हमारा तादात्म्य कैसे बनेगा? माता संतानों को जन्म देती है तो पिता पालन करता है। परमेश्वर प्रदत्त पदार्थों के द्वारा ही वह हमारा पालन-पोषण करता है। ईश्वर ने मनुष्यों तथा अन्य जीवोपयोगी पदार्थ संसार में पहले ही उत्पन्न कर दिये हैं।

2. भ्राता-इसके अनन्तर शिशु घर में अपने भाई-बहनों को देखता है, उनके सम्पर्क में आता है। ये सभी लौकिक बन्धु हैं, सभी को प्राप्त भी नहीं है। वेद कहता है-स नो बन्धुर्जनिता स विधाता। अर्थात् वही परमेश्वर हमारा बन्धु भी है। महर्षि दयानन्द लिखते हैं कि परमेश्वर हमारे लिए भ्राता के समान सुखदायक है। लौकिक भ्राता तो कभी-कभी दु:खदायी भी बन जाते हैं, किन्तु परमेश्वर तो सर्वदा सुख ही देता है। क्या हमने कभी अपने सहोदर भाई की भाँति उससे प्रेम किया? उस पर विश्वास किया? यदि नहीं तो उसके मातृत्व की अनुभूति हम कैसे कर सकते हैं? भाई को बन्धु भी कहते हैं। बध्नाति

(शेष पृष्ठ 7 पर)

(सम्पादकीय)

वैदिक सिद्धान्त एवं आर्य समाज की मान्यताएं ही पाखण्ड एवं अन्धविश्वास को दूर करने का उपाय

आज संसार में जितने भी मत-मतान्तर, पाखण्ड एवं अन्धविश्वास फैल रहे हैं उन सबको दूर करने का एकमात्र उपाय वैदिक सिद्धान्तों का प्रचार एवं आर्य समाज की मान्यताओं की स्थापना करना है। अगर समाज में आज पुनः वेद मत स्थापित हो जाता है तो ये सभी ढ़ोग, अन्धविश्वास और कुरीतियां अपने आप समाप्त हो जाएंगी। भूत प्रेत, जादू टोना, वशीकरण, फलित ज्योतिष के नाम पर जो भ्रम लोगों में फैला हुआ है उसका मूल कारण वैदिक मान्यताओं से परिचित नहीं होना है। आर्य समाज महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित एकमात्र ऐसी संस्था है जिसका मूल आधार वेद हैं और जो सत्य सनातन वैदिक सिद्धान्तों पर आधारित है। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी का उद्देश्य था सत्य को मानना-मनवाना और असत्य को छोड़ना-छुड़वाना। इन्हीं ऋत एवं सत्य नियमों की स्थापना के लिए ऋषि दयानन्द ने आर्य समाज की स्थापना की थी। आईये ऋषि दयानन्द की मान्यताओं पर विचार करते हुए पाखण्ड एवं अन्धविश्वास को दूर करने का संकल्प लें।

जो लोग आर्य समाज से परिचित नही हैं उनकी ऐसी मान्यता है कि आर्य समाजी कुछ नहीं मानते। वह देवी देवताओं की पूजा नहीं करते। भगवान राम और कृष्ण को नही मानते। यह भ्रान्ति उनकी आर्य समाज की मान्यताओं के प्रति अनभिज्ञता के कारण होती है। आर्य समाज प्रत्येक बात को तर्क की कसौटी पर कसकर विवेकपूर्ण ढंग से मानता है। वह न अन्धविश्वास की परम्पराओं का समर्थक है, न लकीर का फकीर बनने में विश्वास रखता है और न ही वह आधुनिक चकाचौंध में बहता है। सभी बातें सत्य और असत्य को विचार कर करना ही आर्य समाज का ध्येय और उद्देश्य है। आर्य समाज सब अच्छाईयों को मानता और स्वीकार करता है। वह रूढ़िवाद व दकियानूसी विचारधाराओं का परित्याग करने का आग्रह करता है तथा संकीर्णता का प्रबल विरोधी रहा है। आर्य समाज की मान्यताएं वेदों पर आधारित होने से सनातन और शाश्वत हैं। साथ ही देश काल परिस्थिति के अनुसार आर्य समाज सामयिक सुधारों को भी महत्व देता है।

1. ईश्वर एक है अनेक नहीं। वेद और वेदानुकूल सभी ग्रन्थों में ऐसा ही लिखा है। एक ही ईश्वर को अनेक नामों से अर्थात् उसके गुण, कर्म, स्वभाव के आधार से पुकारा जाता है। आर्य समाज के दूसरे नियम में परमात्मा सत् चित् और आनन्दस्वरूप है। वह निराकार सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालू, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है। पंचमहाभूत अर्थात् पृथिवी, आकाश, वायु, अग्नि, जल और संसार का कोई भी महापुरूष उपास्य देव नहीं है। प्रकृति से बने पदार्थ और कोई जीव-जन्तु उपास्य देव नहीं है।

2. आर्य समाज की मान्यता है कि ईश्वरीय आनन्द की प्राप्ति का नाम मोक्ष है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि द्वारा ईश्वर का साक्षात्कार किया जा सकता है। आत्मा परमात्मा के साक्षात्कार का अन्य कोई मार्ग नहीं है। मोक्ष के पश्चात जीव की पुनरावृत्ति भी आर्य समाज मानता है, परन्तु संसार के सभी मत-मतान्तर जीव की पुनरावृत्ति को नहीं मानते। महर्षि दयानन्द लिखते हैं कि सीमित कर्मों का फल असीमित नहीं हो सकता। अतः मुक्ति अनन्तकाल की नहीं हो सकती। जीवों का सामर्थ्य परिमित है। असीम आनन्द को भोगने का सामर्थ्य जीवों में नहीं।

3. वैदिक धर्म तीन अनादि सत्ताओं को स्वीकार करता है-परमात्मा, जीवात्मा और प्रकृति। केवल जैन मत को छोड़कर संसार के सभी मत-मतान्तर प्रकृति के विषय में मौन हैं। प्रकृति के बिना सृष्टि रचना हो ही नहीं सकती। जैसे आटे के बिना रोटी नहीं पकती। अन्य मतों में ईश्वर को ही निमित्त व उपादान कारण मान लिया गया है। निमित्त कारण चेतन होता है और उपादान कारण जड़ होता है। इसलिए चेतनता और जड़ता दो विरोधी गुणों का ईश्वर में होना असम्भव है। अतः ईश्वर से भिन्न प्रकृति की सत्ता को मानना ही पड़ेगा।

4. आर्य समाज वर्ण व्यवस्था को गुण, कर्म और स्वभाव के आधार पर स्वीकार करता है, जन्म के आधार पर नहीं। जन्म को आधार मानने पर ही छूआछूत, घृणा, द्वेष, भेदभाव बढ़ा है। आर्य समाज ने वैदिक धर्म के आधार पर ही मानव जीवन को ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास आश्रमों में विभक्त किया है। आर्य समाज ने वैदिक धर्म के आधार पर ही नारी को बहुत ऊंचा स्थान दिया है। अन्य मतों में नारी को नरक का द्वार, पांव की जूती समझा जाता था। आर्य समाज ने बताया कि नारी केवल विषय भोग की वस्तु नहीं है। यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता के आधार पर नारी को पूजनीय बताया।

5. आर्य समाज पाखण्ड और अन्धविश्वास को स्वीकार नहीं करता। भूत-प्रेत, जादू, टोने, तन्त्र विद्या का आर्य समाज विरोध करता है। आर्य समाज तन्त्र मन्त्र को नहीं मानता। डोरा ताबीज देने से किसी के दुःख दूर नहीं हो सकते। ये डोरा ताबीज ईश्वर की कर्मफल व्यवस्था को नहीं बदल सकते। रसरयन, मारण, मोहन, उच्चाटन और वशीकरण आदि जितनी क्रियाएं हैं ये सब व्यर्थ हैं। ये सब क्रियाएं लोगों को अविद्या और अज्ञान में फंसाने वाली हैं। आर्य समाज में जीवात्माओं के कर्मों का सम्बन्ध ग्रहों से नहीं माना गया है। कर्मों का सम्बन्ध जीवात्माओं के साथ होता है। ईश्वर की कर्म फल व्यवस्था के अनुसार जीवों को फल प्राप्त होता है।

6 आर्य समाज में वैदिक धर्मानुसार जल और स्थल को तीर्थ नहीं माना गया है। वैदिक धर्म में तीर्थ उन्हें कहते हैं जो मनुष्यों को तारते हैं। वेदादि सत्य शास्त्रों को पढ़ना-पढ़ाना, धार्मिक विद्वानों का संग, परोपकार, धर्मानुष्ठान, योगाभ्यास, निष्कपटता, सत्यभाषण, ब्रह्मचर्य, आचार्य, अतिथि, माता पिता की सेवा, सुशीलता, धर्मयुक्त पुरूषार्थ, ज्ञान-विज्ञान की प्राप्ति ये सब तीर्थ हैं, क्योंकि ये सब मनुष्यों को तारने वाले हैं। आर्य समाज अहिंसा और हिंसा दोनों के समन्वय को स्वीकार करता है। किसी को बिना कारण शारीरिक, मानसिक और वाचिक रूप से पीड़ा नहीं देनी चाहिए, परन्तु जो दुष्ट, दुराचारी और देश, धर्म और संस्कृति पर आक्रमण करने वाले होते हैं उनको प्रताड़ित करना वैध है।

7. वैदिक धर्मानुसार आर्य समाज की मान्यता है कि जीवात्माएं कर्म करने में स्वतन्त्र हैं और फल भोगने में परतन्त्र हैं अन्य मतों की धारणा है कि जीवात्माएं ईश्वर की इच्छानुसार ही कार्य करती हैं। अगर ऐसा है तो आत्माओं को शुभ और अशुभ कर्मों का फल नहीं मिलना चाहिए। क्योंकि कर्म करने में उनकी स्वतन्त्रता ही नहीं है। जब स्वतन्त्रता ही नहीं है तो आत्माएं कर्मफल की भागी क्यों बनें। कर्मफल की भागी भी ईश्वर को ही होना चाहिए।

इस प्रकार आर्य समाज की मान्यताओं को जानने और समझने के लिए वैदिक साहित्य का स्वाध्याय अथवा आर्ष साहित्य का अध्ययन आवश्यक है। तभी आर्य समाज और उसकी मान्यताओं की वास्तविक पहचान हो सकती है। संसार का उपकार करना आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वैदिक मान्यताओं को धारण करना आवश्यक है। वैदिक मान्यताओं के प्रचार-प्रसार के लिए उसका गहन चिन्तन और मनन आवश्यक है। आर्य समाज की उन्नति भी तभी हो सकती है जब सब लोग आर्य समाज की मान्यताओं से भली-भांति परिचित होंगे।

प्रेम भारद्वाज
संपादक एवं सभा महामन्त्री

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने ही सत्य ईश्वर की अनुभूति करायी

ले.-पं. उम्मेद सिंह विशारद वैदिक प्रचारक गढ़निवास मोहकमपुर देहरादून

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम व सप्तम सम्मुलास में ईश्वर की अनुभूति करायी व अन्य समुल्लास में संकेत किया कि महाभारत काल से एक हजार वर्ष पूर्व तक समाज में वेदों का पठन पाठन था, तथा वेदानुसार संस्कार होते थे, और वैदिक संस्कृति, व सभ्यता का ही चलन था। सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम समुल्लास के प्रारम्भ में ओ३म् यह औंकार शब्द परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम है, क्योंकि इसमें जो अ, उ और म् तीन अक्षर मिलकर एक (ओ३म्) समुदाय हुआ है, इस एक नाम से परमेश्वर के बहुत नाम आते हैं। जैसे-अकार से विराट अग्नि और विश्वादि। उकार से हिरण्यगर्भ वायु और तैजसादि। मकार से ईश्वर आदित्य और प्राज्ञादि नामों का वाचक और ग्राहक है। उसका ऐसा ही वेदादि सत्य शास्त्रों में स्पष्ट व्याख्यान किया है कि प्रकरणानुकूल ये सब नाम परमेश्वर के ही हैं। ''ओ३म्'' यह तो केवल परमात्मा ही का नाम है।

ततो विराडजायत विराजो अधिपूरूष-।

श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखाद-ग्निरजायत।।

यजु. अ० 3?

वेदों के व तैत्तिरीयोपनिषद के प्रमाणों में विराट, पुरूष, देव, आकाश, वायु, अग्नि, जल, भूमि, आदि नाम लौकिक पदार्थों के होते हैं, क्योंकि जहां-जहां उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, अल्पज्ञ आदि विशेषण भी लिखें हो वहां-वहां परमेश्वर का ग्रहण नहीं होता। वह उत्पत्ति आदि व्यवहारों से पृथक है, और उपरोक्त मन्त्रों में उत्पत्ति आदि व्यवहार है, इसी से यहां विराट आदि नामों से परमात्मा का ग्रहण न हो के संसारी पदार्थों का ग्रहण होता है। किन्तु जहां-जहां सर्वज्ञादि विशेषण हों वहीं वही परमात्मा और जहां-जहां इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दु:ख और अल्पज्ञादि विशेषण हो वहां-वहां जीव का ग्रहण होता है। ऐसा सर्वत्र समझना चाहिए।

क्योंकि परमेश्वर का जन्म मरण कभी नहीं होता, इससे विराट आदि नाम और जन्मादि विशेषणों से जगत के जड़ और जीवादि पदार्थों का ग्रहण करना उचित है, परमेश्वर का नहीं। (सत्यार्थ प्रकाश प्रथम सम्मुलास)

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्य-स्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः।

यसतन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समससते।। (ऋ०)

अर्थात्-(प्रश्न) वेदों में अनेक देवता लिखे हैं। उसका क्या अभिप्राय है?

(उत्तर) देवता दिव्य गुणों से युक्त होने के कारण कहाते हैं जैसी कि पृथ्वी परन्तु इसको कहीं ईश्वर वा उपासनीय नहीं माना है। देखों इस मंत्र में कि जिससे सब देवता स्थित है, वह जानने और उपासना करने योग्य ईश्वर है। यह उनकी भूल है जो देवता शब्द से ईश्वर का ग्रहण करते हैं। परमेश्वर देवों का देव होने से महादेव इसलिये कहाता है कि वहीं सब जगत की उत्पत्ति स्थिति, प्रलयकर्त्ता, न्यायाधीश, अधिष्ठाता है।

(ऋचो अक्षरे) अर्थात् जो सब दिव्य गुण, कर्म स्वभाव विद्यायुक्त और जिसमें पृथ्वी, सूर्ययादि लोक स्थित है, ओर जो आकाश के समान व्यापक सब देवों का देव परमेश्वर है। उसको जो मनुष्य न जानते न मानते और उसका ध्यान नहीं करते वे नास्तिक मन्दमति सदा दुःख सागर में डूबे ही रहते है। सर्वदा उसी को जानकर सब मनुष्य सुखी होते है।

ईशा वास्यमिंद सर्वं यत्किञ्च जगत्यान्जगत।

तेन त्यक्तेन भुन्जीथा मागृधः-कस्य स्विद्धनम।। (यजुर्वेद)

अर्थात्-हे मनुष्य! जे इस संसार में जगत है, उस सब में व्याप्त होकर जो नियन्ता है वह ईश्वर कहाता है। उससे डर कर तू अन्याय से किसी के धन की आकांक्षा मत कर। उस अन्याय के त्याग और न्यायचरणरूप धर्म से अपने आत्मा से धर्म को भोग।

अहमिन्द्रों न परा जिग्य इध्दंन न मृत्यवेऽवतस्थे कदाचन।

सोममिन्मा सुन्वन्तो याचता वसु न मे पूखः सख्ये रिषाथन।।

(ऋ० वे०)

अर्थातः मैं परमैश्वर्यवान सूर्य के सदृश सब जगत का प्रकाशक हूँ। कभी पराजय को प्राप्त नहीं होता और न कभी मृत्यू को प्राप्त होता हूँ। में ही जगत रूप धन का निर्माता हूँ। सब जगत की उत्पत्ति करने वाले मुझी को ही जानो। हे जीवो ऐश्वर्य प्राप्ति के यत्न करते हुए तुम लोग विज्ञनदि धन को मुझ से मांगो और तुम लोग मेरी मित्रता से अलग मत होओ।

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत।

स दाधार पृथिवी द्यामु तेमा कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

(यजुर्वेद)

अर्थात् : हे मनुष्यो! जो सृष्टि से पूर्ण सुर्यादि तेज वाले लोकों का उत्पत्ति स्थान आधार और जो कुछ उत्पन्न हुआ था और होगा उसका स्वामी था, है और होगा। वह पृथ्वी से लेके सूर्यलोक पर्यन्त सृष्टि को बना के धारण कर रहा हैं। उस सुख स्वरूप परमात्मा ही की भक्ति जैसे हम करें। वैसे तुम लोग भी करो। (सत्यार्थ प्रकाश सप्तम स०)

स पर्यगाच्छुक्रमकाय-मव्र-णमस्नाविरँ शुद्धमपाप-विद्धम।

(यजुर्वेद)

ईश्वर की स्तुति-वह परमात्मा सब में व्यापक शीघ्रकारी और अनन्त बलवान जो शुद्ध सर्वज्ञ, सबका अन्तयामी, सर्वोपरि, विराजमान, सनातन, स्वयंसिद्ध परमेश्वर अपनी जीव रूप सनातन आदि प्रजा को अपनी सनातन विद्या से यथावत अर्थों का बोध वेद द्वारा कराता है। यह सगुण स्तुति अर्थात् जिस-जिस गुण से रहित परमेश्वर की स्तुति करना वह सगुणः (अकाय) अर्थात् कभी शरीर धारण व जन्म नहीं लेता। (सप्तम स०)

प्रेम व समर्पण का मार्ग ही ईश्वर से साक्षात्कार की अनुभूति करा सकता है।

हम प्रायः कहते है कि हमें ईश्वर की प्राप्ति के लिये ईश्वर का चिन्तन करना चाहिए। किन्तु बिना अनुभव के हम चिन्तन नहीं कर सकते है। मन ही सर्वाधिक तीव्रगामी है। विचार ही मन की भक्ति हैं किन्तु जहां मन की सीमा समाप्त होती है। वहां से परमात्मा की सीमा शुरू होती है। अर्थात् जब संसार के भौतिक विचार भक्ति से उपराम होने पर ही उस ईश्वर की अनुभूति होती है। उपनिषदों में कहा गया है कि ईश्वर ने सम्पूर्ण सृष्टि की रचना की ओर सारी कर्मेन्द्रियों का रूखबाहर की ओर रखा और स्वयं हमारे भीतर हमारी हृदय गुहा में छप गया। हमारी सारी उपलब्धियां बाहर से प्राप्त होती है। इसलिये हम ईश्वर को बाहर पाना चाहते है। इस प्रकार ईश्वर की ओर हमारी पीठ हो जाया करती हैं। हम भीतर को छोड़ कर बाहर तलाश करते है। जो चीज हमारे जितनी निकट होती है, उसके होने का आभास उतना ही क्षीण होता है और उसका पता तब चलता है। जब वह चीज हमसे दूर हो जाती हैं। हमने ईश्वर को अपने भीतर होने का बोध खो दिया है। काश हमने कभी परमात्मा को खोया होता तो उसको खोज सकते थे। किन्तु जब हमने उसे खोया ही नहीं तो उसे कैसे और कहां खोंजे।

इस सन्दर्भ में हमें एक यह बात याद रखनी चाहिए कि परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं बल्कि एक प्रबल रचनात्मक शक्ति है। जो अदृश्य हूँ, उसकी शक्ति को ध्यान के जरिये निर्विचार होकर हम अपनी अंतर चेतना में अनुभव कर सकते है।

श्रद्धेय मान्य पाठक जी-यह तो महर्षि दयानन्द सरस्वती जी द्वारा रचित ग्रन्थों से किचिंत मात्र ईश्वर की अनुभूति का संकेत मात्र किया है। ऋषिवर जी के पूर्ण ग्रन्थों को पढ़ने से ही पूर्ण रूप से ईश्वर की अनुभूति हो सकती है।

आर्य मर्यादा साप्ताहिक में विज्ञापन देकर लाभ उठाएं।

सामवेद में ब्रह्म स्वरूप का निरूपण

ले०-शिवनारायण उपाध्याय, 73 शास्त्री नगर दादाबाड़ी, कोटा

(गतांक से आगे)

यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षते।

प्र प्र वयममृतं जातवेद सं प्रियं मित्रन्न संशिषम्।।

साम. म. सं. 35

अर्थ-(यज्ञायज्ञा) प्रत्येक यज्ञ में (यः) तुझ (अग्नये) ईश्वर की (गिरागिरा) अनेक स्तुतियों के द्वारा (दक्षते) बल की प्राप्ति के लिए (प्र प्र) अत्यन्त उत्तम ढंग से (वयम्) हम लोग (अमृतम्) अमर (जातवेदसम्) सर्वज्ञ (प्रियम्) प्यारे (मित्रम्) मित्र के समान (संशिषम्) कीर्तन करते हैं।

त्वन्शिचत्र ऊत्या वसो राधांसि चोदय।

अस्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः।।

साम. म. सं. 41

अर्थ-(त्वम्) तू (नः) हमें (चित्रः) अद्भूत (ऊत्या) रक्षा के साथ (वसो) घट-घट वासी (राधांसि) धनों को (चोदय) प्राप्त करा। हे परमेश्वर! तू इस धन का वास्तविक स्वामी है। हे प्रभो! तू हमारी सन्तान को उत्तम पद प्रदान कर।

ईश्वर सर्वरक्षक, प्रकाश स्वरूप तथा वेदों का कर्ता और व्यापक है।

त्वमित्स प्रथा अस्यग्ने त्रातर्ऋतः कविः।

त्वां वि प्रासः समिधान दीदिव आ विवासन्ति वेधसः।।

साम. म. सं. 42

अर्थ-(त्वमिन्) तू ही (सप्रथा) व्यापक (असि) है। (अग्ने) हे परमेश्वर! (त्रातः) हे सर्वरक्षक। (ऋतः) सत्यस्वरूप (कविः) वेदों का कर्ता (त्वाम्) तुझे (वि प्रासः) ज्ञानी जन (समिधान) हे प्रकाशमान (दीदिवः) हे तेजस्वी (आ) भली-भांति (विवासन्ति) भजन करते हैं (वेधसः) बुद्धिमान लोग।

भावार्थ-हे परमेश्वर! तू सर्व व्यापक है। तू सर्वरक्षक है। तू सत्य स्वरूप है। वेदों का कर्ता है। बुद्धिमान लोग तेरे ही भजन गाते हैं।

परमेश्वर सृष्टि कर्ता और पतित पावन है।

आ नो अग्ने वयो वृधं रयिं पावक शस्यम्।

रास्वा च न उपमाते पुरूस्पृहं सुनीति सुयशस्तरम्।।

साम. म. सं. 43

अर्थ-(आ) भली-भांति (नः) हमें (अग्ने) हे परमेश्वर! (वयोवृधम्) आयु बढ़ाने वाले (रयिम्) धन को (पावक) हे परमेश्वर! हे पति पावन। (शंस्यम्) प्रशंसनीय (रास्वा) दे (च) और (नः) हमारी (उपमाते) हे सृष्टि कर्ता (पुरूस्पृहं) बहुतों से चाहने योग्य (सुनीति) अच्छी नीति से प्राप्त होने वाले (सुयशस्तरम्) यश का विस्तार करने वाले।

भावार्थ-इस मंत्र में ईश्वर को सृष्टिकर्ता कहा गया है। फिर उससे प्रार्थना की गई है कि वह हमें आयु को बढ़ाने वाला, बहुतों द्वारा चाहने योग्य, अच्छी नीति से प्राप्त होने वाले, यश को बढ़ाने वाले धन को प्रदान करे।

परमेश्वर सृष्टिकर्ता, प्रकाश स्वरूप, अविनाशी और सर्व व्यापक है।

जातः परेण धर्मणा यत्सवृद्धि सहाभुवः।

पिता यत्कश्यपस्याग्निः श्रद्धामाता मनुः कवि।।

साम. म. सं. 90

अर्थ-(जातः) जनक (परेण) परम सूक्ष्म (धर्मणा) धर्म से (यत्) जिस कारण से (सवृद्धिः) सहवर्तिनी शक्तियों से (आभुवः) विद्यमान है। (पिता) पिता (कश्यपस्य) ज्ञानी मनुष्य का (अग्निः) परमेश्वर (श्रद्धा) सत्य का धारक (कविः) कवि (माता) माता (मनुः) ज्ञानी।

भावार्थ-क्योंकि परमेश्वर सूक्ष्म गतियों से सबका उत्पादक होकर अपनी सहवर्तिनी शक्तियों के साथ विद्यमान है और ज्ञानी पुरूष का पिता है। अतः वही सत्य का धारक, कवि, ज्ञानी और सबकी माता है।

ईश्वर जीवों को उनके कर्मों का फल देने वाला है।

अग्ने यजिष्ठो अध्वरे देवान् देवयते यज।

होतामन्द्रोवि राजस्यति स्रिधः।।

साम. म. सं. 100

अर्थ-(अग्ने) हे अग्नि स्वरूप परमात्मा! (यजिष्ठः) अत्यन्त पूजनीय (अध्वरे) कल्याणकारी यज्ञ में (देवयते) उत्तम गुण चाहने वाले यजमान के लिए (देवान्) उत्तम विद्वान् पुरूषों को (यज) प्रदान कर या दे, (होता) कर्मफल दाता (मन्द्रः) स्तुति के योग्य (विराजसि) विराजमान है (अति) दबा कर (स्रिधः) दुःखदायी भावों को।

भावार्थ-अग्नि स्वरूप परमात्मा अत्यन्त पूजनीय, कर्म फल प्रदाता और स्तुति के योग्य है। वह कल्याणकारी यज्ञ में यजमान को उत्तम विद्वानों को प्राप्त करावे।

यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारमर्त्यम्।

अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम्।।

साम. म. सं. 112

अर्थ-(यजिष्ठम्) अत्यन्त पूज्य (त्वा) तुझे (ववृमहे) भजते हैं। (देवम्) देव (देवत्रा) देवों में (होतारम्) दाता (अमर्त्यम्) अविनाशी (अस्य) इस संसार रूप (यज्ञस्य) यज्ञ को (सुक्रतुम्) भली-भांति सफल करने वाले।

भावार्थ-परमात्मा देवाधि देव, कर्म फल प्रदाता, अविनाशी है। हम इसे भजते हैं।

ईश्वर सर्व शक्तिमान् तथा आनन्द स्वरूप है।

बोधन्मना इदस्तु नो वृत्रहा भूर्यासुतिः।

शृणोतु शक्र आशिषम्।।

साम. म. सं. 140

अर्थ-(बोधन्मना) मेरा अभिप्राय जानना है (इत्) ही (अस्तु) हो। (नः) हमारी (वृत्रहा) अज्ञान नाशक (भूर्या सुतिः) आनन्द घन (शृणोतु) सुनता है (शक्रः) शक्तिमान् ईश्वर (आशिषम्) स्तुति।

भावार्थ-परमात्मा अन्तर्यामी है। वह मेरा अभिप्राय जानता है। वह अज्ञान का नाश करने वाला, आनन्द धन है और हमारी स्तुति को सुनता है।

क्वा इस्य वृषभो युवा तुवीग्रीवो अनानतः।

ब्रह्मा कस्तं सपर्यति।।

साम. म. सं. 142

अर्थ-(क्व) कहां है (स्य) वह (वृषभ) सुख का दाता (युवा) अजर (तुवीग्रीवः) विराट् स्वरूप (अनानतः) शक्तिशाली (ब्रह्मा) चारों वेदों का ज्ञाता (कः) कौन (तम्) उसकी (सपर्यति) भली-भांति उपासना करता है।

भावार्थ-सुख का दाता, अजर, विराट् स्वरूप, सर्वशक्तिमान् ईश्वर कहां है ? चारों वेदों का ज्ञाता पुरूष ही उसकी उपासना कर सकता है।

परमात्मा स्वयं अपने स्वरूप के विषय में कहते है-

अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रह।

अहं सूर्य इवाजनि।।

साम. म. सं. 152

अर्थ-(अहम्) मैं (इत्) ही (हि) क्योंकि (पितुष्परि) द्युलोक के मेधाम्) ज्ञान को (ऋतस्य) अग्नि के (जग्रह) अच्छी प्रकार धारण करता हूँ। (अहम्) मैं (सूर्य इव) सूर्य के समान (अजनि) उत्पन्न करता हूँ।

भावार्थ-मैं परमेश्वर द्युलोक तथा अग्नि या सांसारिक नियम के पूर्ण ज्ञान को धारण करता हूँ। मैं ही सूर्य के समान ज्ञान के प्रकाश को उत्पन्न करता हूँ।

इस प्रकार हम केवल इन 15 मंत्रों के आधार पर ही ज्ञात कर लेते हैं कि ब्रह्म सर्व व्यापक, सब धनों का स्वामी और दाता, प्रकाशकों का प्रकाशक, अपने प्रचण्ड तेज से सृष्टि को नियन्त्रण में रखता है। वह ब्रह्माण्ड का उत्पादक और स्वामी है। वह अजर, अमर और सर्वज्ञ है। वह सर्वरक्षक, वेदों का कर्ता, सत्य स्वरूप और अविनाशी है। वह जीवों को उनके कर्मों का फल देने वाला है। वह देवधिदेव निराकर और सर्व शक्तिमान् है। वह तो गुणतीत है। उसे ब्रह्मा ही कुछ जान सकता है।

स्त्री आर्य समाज दाल बाजार लुधियाना का चुनाव सम्पन्न

स्त्री आर्य समाज महर्षि दयानन्द बाजार (दाल बाजार) लुधियाना का चुनाव पिछले दिनों सम्पन्न हुआ जिसमें सर्वसम्मति से श्रीमती किरण टण्डन जी को प्रधान चुना गया। उन्होंने अपने अधिकारों का प्रयोग करते हुये श्रीमती जनक आर्या जी को स्त्री आर्य समाज दाल बाजार लुधियाना की मंत्राणी और कोषाध्यक्ष श्रीमती बाला गम्भीर को मनोनीत किया।

-जनक आर्या

आर्य मर्यादा साप्ताहिक पढ़ें और दूसरों को पढ़ाएं तथा लाभ उठाएं।

स्थायी शासक ही प्रजा के लिए उत्तम

ले.-डॉ. अशोक आर्य १०४ शिप्रा अपार्टमेन्ट, कौशाम्बी गाजियाबाद

लेख के प्रथम भाग में स्पष्ट किया गया है कि ऋग्वेद के मन्त्र संख्या १०.१७३.१ ने वेदानुसार प्रजातंत्र ही सर्वोत्तम शासन पद्धति है। राजा का चुनाव प्रजा के द्वारा हो तथा वह ही नहीं बल्कि उसका पूरे का पूरा मंत्रिमडल तब तक ही सत्ता का सुख प्राप्त कर सकता है, जब तक प्रजा का विश्वास उस पर बना हुआ है, ज्यों ही वह प्रजा के विश्वास का पात्र नहीं रहता, त्यों ही उसे सत्ता से अलग हो जाना चाहिए। अन्यथा प्रजा में इतनी शक्ति होनी चाहिए कि वह उसे सत्ता से च्युत कर सके। इस बात को ही ऋग्वेद के १०.१७३.२ मन्त्र इस प्रकार उपदेश किया गया है-

इहैवैधि मापं च्योष्ठा पर्वत इवाविचाचलिः।

इंद्र इवेह ध्रुवस्तिष्ठेह राष्ट्रमु धारय।। ऋग्वेद १०.१७३.२।।

मन्त्र उपदेश कर रहा है कि एक स्थिर राजा ही उत्तम शासन दे सकता है। स्थायी शासक ही प्रजा के लिए उत्तम व्यवस्था कर सकता है। स्थायी राजा के बिना प्रजा को सुख के दर्शन नहीं हो सकते। प्रजा के कल्याण के लिए राजा का स्थिर होना आवश्यक है।

राजा लम्बे समय तक पदासीन हो इस तथ्य को मध्य दृष्टि रखते हुए मन्त्र कह रहा है कि हे राजन्! तू इस प्रकार के प्रयास कर, तू इस प्रकार का यत्न कर कि तू अधिक व लम्बे समय तक अपने आप को सत्ता का उपभोग करने के लिए बनाए रख सके। यह सब करने के लिए अधिकाधिक जन-कल्याण के कार्य कर ताकि तू इस पद पर स्थिर रह सके। जनता में यह इच्छा पैदा हो कि तू उसके लिए एक उत्तम शासक है। जब तू जनता की दृष्टि में उत्तम होगा तो जनता कभी तुझे पदच्युत करने का सोचेगी भी नहीं।

अटल हिमालय की भान्ति स्थिर रह मन्त्र कहता है कि हे राजन्! तू न केवल अपने पद पर स्थिर रह बल्कि अपने कर्त्तव्यों का अधिभार इस प्रकार संभाल, अपने कर्तव्यों की पूर्ति के लिए इस प्रकार अडिग रह, जिस प्रकार पर्वत स्थिर रहता है, अडिग रहता है। चाहे कितने भी आंधी या तूफ़ान आयें किन्तु तू किसी भी झंझावात में घबराना नहीं, डिगना नहीं अटल हिमालय की भाँति स्थिर रहना। अपने कर्तव्य मार्ग से कभी विमुख मत होना, अपने कर्तव्य मार्ग से कभी भागना नहीं, कभी विचलित नहीं होना।

इतना ही नहीं मन्त्र आगे कहता है कि हे राजन्! जन कल्याण के कार्य करते हुए अपने अन्दर इतना तेज पैदा कर जितना कि सूर्य में होता है। इसलिए तू सूर्य के सामान तेजस्वी बन। जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश सब प्रकार के मालों को धो देता है, सब प्रकार के कीटाणुओं का नाश कर वातावरण को स्वच्छ बना देता है। ठीक इस प्रकार ही तू अपने अंदर अपनी अपार शक्ति से इस प्रकार का तेज पैदा कर कि तेरे क्षेत्र में किसी प्रकार का कलुष रह ही न पावे। कोई भी शत्रु तेरे क्षेत्र में आ कर गंदे कार्य न कर सके। तेरे राज्य में आ कर शत्रु कांपने लगे, थरथराने लगे, उसका साहस टूट जावे। इस प्रकार की शक्ति, इस प्रकार का तेज़ तथा इस प्रकार का प्रकाश अपने अन्दर पैदा कर।

मन्त्र आगे कह रहा है कि हे राजन्! तू छोटी-छोटी समस्या को लेकर कभी विचलित न होना क्योंकि विचलित होने से तेरे अन्दर का धैर्य नष्ट हो जावेगा। इसलिए सब प्रकार की समस्याओं का सामना बड़े धैर्य से कर, हिम्मत से कर, साहस से कर। जब तक तेरे अन्दर धैर्य है, तब तक तेरे अन्दर असीमित शक्ति बनी रहेगी, तब तक तेरे अन्दर साहस रहेगा, तब तक तेरे अन्दर हिम्मत रहेगी। ज्यों ही तेरे अन्दर से धैर्य निकल जावेगा, त्यों ही तेरी बुद्धि, तेरा साहस, तेरी हिम्मत तेरा साथ छोड़ जावेगी, जो कि तेरे विनाश का कारण बनेगी। इस प्रकार धैर्य के साथ अपने पद पर आसीन रहने के लिए तू धैर्य को बनाए रख। इन अवस्थाओं में रहते हुए तू अपने राज्य की प्रजा की निश्चय पूर्वक सेवा कर तथा अपने इस राज्य को, इस राष्ट्र को निश्चय पूर्वक धारण कर।

मन्त्र कहता है कि हे राजन्! तू कभी अपने इस पद से कभी च्युत न होना बल्कि पर्वत के समान स्थिर रूप से स्थिर रहना, कभी डगमगा न होना। तू तब तक ही राजा के इस पद पर रह सकता है, जब तक तू पर्वत के समान स्थिर रहते हुए अपने कर्तव्यों को पूर्ण करता रहेगा। तू इस पद पर तब तक ही रह सकेगा, जब तक कि जनता के हित के प्रजा के कल्याण के कार्य करता रहेगा। जनता का हित करना ही तेरा एकमात्र उद्देश्य है, यही तेरा एक मात्र कार्य है, जब तक तू इस प्रकार की सेवा करता रहेगा। तब तक तू पर्वत के समान स्थिर है, ज्यों ही जनहित के कार्यों से विमुख होगा त्यों ही तेरा अन्त आ जावेगा, तेरी स्थिरता का नाश हो जावेगा।

जनहित के कार्यों से ही स्थिरता

जो उपदेश ऋग्वेद के अध्याय १०.१७३ के मन्त्र संख्या एक में दिया गया था। कुछ इस प्रकार का ही उपदेश इस १०.१७३.२ में दिया गया है तथा कहा गया है कि राजा को अपनी सत्ता को स्थिर बनाने के लिए जनहित के कार्य करने होंगे जितने अधिक जनहित के कार्य वह करेगा उतना ही अधिक उसकी सत्ता स्थिरता को प्राप्त होगी। इसलिए प्रजातांत्रिक व्यवस्था में राजा के लिए यह आवश्यक होता है कि वह अधिक से अधिक जनहित के कार्य करे। इस तथ्य की पुष्टि यजुर्वेद इस प्रकार करता है कि :

विशि राजा प्रतिष्ठितः।। यजुर्वेद २०.९।।

राजा के यश और कीर्ति का कारण उसकी प्रजा यजुर्वेद के बीसवें अध्याय का यह नवम मन्त्र उपदेश करता है कि राजा की स्थिरता तथा राजा की प्रतिष्ठा प्रजा पर ही निर्भर करती है। राजा-प्रजा की भलाई करके उसका मन जीतता है तो प्रजा भी उस का आदर करती है, उसका सम्मान करती है तथा दीर्घ काल तक उसे उसके पद पर स्थिर बनाए रखती है। यदि राजा प्रजा के हितों की रक्षा न कर प्रजा की हानि के कार्य करता है तो अवसर मिलते ही प्रजा उसे पद से च्युत कर देती है, उसे पद से हटा देती है। इसलिए मन्त्र कहता है कि राजा के यश और कीर्ति का कारण उसकी प्रजा ही होती है, जिससे राजा का सम्मान बढ़ता है तथा राजा के विनाश का कारण भी जनता ही होती है। अपने शासन को दीर्घजीवी व स्थिर बनाने के लिए राजा को चाहिए कि वह अधिकाधिक् प्रजा के लिए उत्तम कार्य करे।

इस सब से यह स्पष्ट होता है कि राजा की स्थिरता प्रजा के हितों पर, प्रजा की इच्छा तक निर्भर है। प्रजातंत्र का शासक यह जानता है कि उसकी स्थिरता, उसका सम्मान तब तक ही स्थिर है, जब तक प्रजा उसके पक्ष में है। प्रजा के पास उसे पद से हटाने का अधिकार है, चाहे वह आज हटा दे या चुनाव के समय उसे अपना मत न देकर उसे पद से हटा देवे। इसलिए अधिक से अधिक समय तक सत्ता का सुख भोगने के लिए राजा सदा इस प्रयत्न में रहेगा कि प्रजा की दया उस पर बनी रहे। प्रजा का यह आशीर्वाद पाने के लिए वह प्रजा के हितों का अधिक से अधिक ध्यान रखेगा। वह प्रजा के कल्याण के लिए, प्रजा के सुखों के बढ़ाने के लिए सदा यत्न करता रहेगा। कभी कोई इस प्रकार का कार्य नहीं करेगा कि जिससे प्रजा को कष्ट हो, दुःख हो, उसका कल्याण न हो क्योंकि वह जानता है कि इस प्रकार के कार्य करने से वह अपनी कबर स्वयं खोद रहा है। इसलिए वह अपने राज्य को स्थायी व सुरक्षित बनाए रखने के लिए प्रजा के लिए सदा उत्तम कार्य करता रहता है।

पृष्ठ 2 का शेष-जीव का ईश्वर...

प्रेम्णा इति बन्धुः। अर्थात् जो प्रेम से बांध ले, वह बन्धु है। परमेश्वर भी हम सबसे बन्धु के समान प्रेम करता है, किन्तु हम उसके प्रेम को समझ नहीं पाते।

3. मित्र-कुछ बड़ा होकर बालक अपने मित्रों-साथियों से मिलता है। अब वे भी उसके लिए भाई के समान ही सुखदायी हैं। वेद भी कहता है- द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया-1 अर्थात् जीव एवं परमेश्वर दोनों सखा हैं। सखा का अर्थ है-सखा सखायमतरद् विषूचोः। अर्थात् मित्र अपने मित्र को विपत्ति से बचाता है। लौकिक मित्र चाहे ऐसा न करते हों, परमेश्वर तो हमें प्रतिक्षण विपत्ति से बचाकर हमारी रक्षा करता है। क्या कभी हमने परमेश्वर को अपने सच्चे मित्र की भाँति देखा है? यदि नहीं तो हमारे मन में उसकी अनुभूति कैसे होगी, जिसके साथ हमारी आत्मीयता या वैमनस्य होता हो उसकी स्मृति ही हमें बार-बार आती है। परमेश्वर के साथ न तो हमारी आत्मीयता है तथा न ही वैर, तो उसकी अनुभूति भी हमें नहीं हो सकती।

4. गुरु-कुछ और बड़ा होकर बच्चा शिक्षा हेतु विद्यालय में जाता है। वहाँ उसका सम्पर्क गुरुजनों से होता है जो उसके अज्ञानान्धकार को दूर करके उसे प्रकाश देते हैं। लोक में भी गुरु की बहुत महिमा है। परमेश्वर हमारा ही नहीं, हमारे गुरुओं का भी गुरु है। पतंजलि मुनि कहते हैं-

स एष पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्। अर्थात् परमेश्वर तो पहले गुरुओं का भी गुरु है। गुरु की भाँति वह सदा हमारे हृदय में उत्तम उपदेश देता रहता है। क्या हम उसे सुनकर उस पर चलने का यत्न करते हैं? हम लौकिक गुरुओं के प्रति श्रद्धा, विनीत रहते हैं, क्या परमेश्वर के प्रति भी हमारी इतनी ही श्रद्धा है? यदि नहीं तो उसके उपदेश को हम कैसे आत्मसात् करेंगे?

इस प्रकार हमारे साथ परमेश्वर का माता-पिता, भाई, सखा तथा गुरु का सम्बन्ध है। मनुष्य को उन्नति पथ पर पहुंचाने वाली ये भी शक्तियाँ हैं। परमेश्वर इन पाँचों रूपों में हमारे साथ हैं, हम उसे पहचान सकें तो। पहचान कर उसकी अनुभूति हृदय में कर सकें तो लौकिक जीवन में यही ईश्वर की प्राप्ति है।

माता-पिता, पुत्रों, मित्रों, सम्बन्धियों के साथ हमारा सम्बन्ध इतना घनिष्ठ तथा प्रगाढ़ रहता है कि मृत्यु समय भी कुछ व्यक्ति इनका ही स्मरण करते हुए या देखकर प्राण त्यागते हैं, जबकि वेद कहता है-ओ३म् क्रतो स्मर, क्लिबे स्मर, कृतं स्मर। हे मानव! तू संसार में रहते हुए तथा यहां से जाते हुए भी ओ३म् = परमेश्वर का स्मरण करते रहना। तेरी मृत्यु के समय परमेश्वर तुझे याद रहे, किन्तु ऐसा नहीं होता, क्योंकि हमने पूरे जीवन परमेश्वर के साथ माता-पिता, बन्धु, सखा तथा गुरु आदि का भी तो सम्बन्ध नहीं बनाया है। बनाया होता तो निश्चित रूप से वह अन्त समय भी हमें उसी प्रकार याद रहता, जिस प्रकार अपने सगे सम्बन्धियों का स्मरण हमें आता है।

परमेश्वर के साथ अपना बन्धु, गुरु आदि का सम्बन्ध बनाना क्रियात्मक लौकिक मार्ग है। उसकी अनुभूति करने का। योग मार्ग का भी लक्ष्य यही है।

जम्मू कश्मीर में वेद प्रचार की धूम

प्रति वर्ष की भान्ति इस वर्ष भी वेद प्रचार मंडल राजौरी पूंछ के तत्वावधान में 6 अप्रैल से 20 अप्रैल तक वेद प्रचार का कार्यक्रम धूमधाम से सम्पन्न हुआ। 6, 7, एवं 8 अप्रैल को आर्य समाज लम्बेडी का वार्षिक उत्सव आरम्भ हुआ जिसमें ध्वजारोहण प्रिंसीपल सूरज प्रकाश के कर कमलों से हुआ। 9 अप्रैल को गांव ऐनपुर सुन्दरब्नी में श्रीमती सुरेन्द्रा एवं श्री नरेश जी के घर पर वेद प्रचार का कार्यक्रम हुआ। 10 अप्रैल एवं 11 अप्रैल को आर्य समाज भजन्वा नौशहरा में वेद प्रचार का कार्यक्रम बड़ी धूमधाम से सम्पन्न हुआ। स्वर्गीय विद्या भूषण जी की स्मृति में 12 एवं 13 अप्रैल को आर्य समाज राजौरी में वेद प्रचार हुआ जिसमें विशेष हवन यज्ञ एवं सत्संग रखा गया। उनकी धर्मपत्नी श्रीमती वीरता ने अपने पति की स्मृति में 2500 रुपये वेदप्रचार मंडल की स्थिर निधि को दान दिया। 14 एवं 15 अप्रैल 2018 को गांव जमैना लम्बेडी में महाशय रोशन शास्त्री जी के घर पर सत्संग एवं हवन यज्ञ का आयोजन किया गया। इसी दिन बच्चों ने आर्य समाज का प्रचार एवं प्रसार करने का संकल्प लिया। 16 एवं 17 अप्रैल 2018 को गांव सलेरी में पंडित लाल चंद जी के घर पर हवन एवं सत्संग हुआ जिसमें लोगों ने बढ चढ़ कर हिस्सा लिया। 18 अप्रैल को श्री भारत भूषण जी मल्होत्रा जी के घर पर हवन यज्ञ एवं पारिवारिक सत्संग हुआ जिसके पश्चात ऋषि लंगर का भव्य आयोजन किया गया। 19 एवं 20 अप्रैल को आर्य समाज पंचतूत जिला जम्मू अखनूर में सफल वेद प्रचार हुआ। प्रत्येक स्थानों पर बीच बीच में सत्यार्थ प्रकाश, महर्षि दयानन्द जी की जीवनी एवं आर्य समाज क्या मानता है पुस्तक बांटी जाती रही। यह एक सफल आयोजन था जिसमें लोगों ने बढ़ चढ़ कर सहयोग दिया। इस प्रचार यात्रा में आचार्य देवव्रत जी, भजनोपदेशक श्री कुलदीप विद्यार्थी के भजनों की धूम रही।

-चुनी लाल आर्य

समराला में चरित्र निर्माण शिविर सम्पन्न

आर्य समाज समराला में पंतजलि योग समिति द्वारा ग्रीष्म कालीन चरित्र निर्माण शिविर 6 मई 2018 दिन रविवार को सम्पन्न किया गया।

यह शिविर 1 मई से लेकर 6 मई तक प्रतिदिन प्रातः 6:00 बजे से 7:30 बजे तक धर्माचार्य श्री राजेन्द्र व्रत शास्त्री जी की अध्यक्षता में लगाया गया। जिसमें हर रोज़ बच्चों को योगाभ्यास, आध्यात्मिक ज्ञान व नैतिक शिक्षा से शिक्षित किया गया। इस शिविर में रहकर बच्चों ने अमूल्यरत्न प्राप्त किऐ। इस शिविर में समराला के विभिन्न विद्यालयों के बच्चों ने भाग लिया। शिविर में 6वीं कक्षा से लेकर 10वीं कक्षा के बच्चों ने भाग लिया। पतंजलि योग समिति द्वारा सभी बच्चों को शिविर में भाग लेने पर प्रमाण पत्र और मेधावी बच्चों को पुरस्कार भी दिए 6 मई को प्रातः 6:00 से 8:00 बजे तक समापन समारोह किया गया जिससे सबसे हवन यज्ञ पश्चात्-बच्चों ने कविता, भजन, प्रसंग, प्रदर्शनी की अन्त में शिविराध्यक्ष व्रत जी ने कहा कि विद्यार्थी काल बहुत ही परिश्रमी काल होता है। इस काल को कुन्दन बनाने वाली तपती भट्ठी जानें। जो इस भट्ठी में तपता है। वही अमूल्य कुन्दन बनता है और उसकी कीमत सबसे खरी होती है। इसलिए जो विद्यार्थी तपस्वी बनकर इस काल को सरलता से पार करता है। वही प्रतापी यशस्वी, और महापुरुष बनता है और कहा कि माता-पिता और आचार्य ही हमारा निर्माण करते है। इसलिए इनका सम्मान करने से हम संसार में ऊंचे उठ सकते हैं।

इस अवसर पर आर्य समाज के प्रधान श्री सोम प्रकाश आर्य जयदीप, संजय मौर्य, राज कुमार ढण्ड, रमन गुप्ता, गगनदीप, श्रीराम, अमरनाथ तागरा, हंसराज, सीमा रानी, श्रुति व्रत, कंचन शास्त्री, आर्य समाज व पतंजलि योग समिति के सदस्य एवम् भाग लेने वाले बच्चों के माता पिता भी उपस्थित थे। शान्ति पाठ के बाद प्रातः राश वितरण किया गया।

योग शिक्षक अम्ब्रेश कुमार आर्य

महात्मा हंसराज के जन्म दिवस पर भाषण प्रतियोगिता का आयोजन

दिनांक 13/5/2018 को आर्य समाज मंदिर दीनानगर में तप एवं त्याग के प्रतीक, डी.ए.वी. के महान स्तम्भ महात्मा हंसराज जी के जन्म दिवस पर समर्पित एक भाषण प्रतियोगिता का आयोजन किया गया जिसकी अध्यक्षता स्वामी सदानन्द जी महाराज अध्यक्ष दयानन्द मठ दीनानगर ने की। इस प्रतियोगिता में क्षेत्र की लगभग 12 शिक्षण संस्थाओं के 20 बच्चों ने भाग लिया। सभी बच्चों ने महात्मा हंसराज जी के जीवन पर विस्तार से प्रकाश डाला। दयानन्द इंटरनैशनल स्कूल घरोटा की छात्रा जिया प्रथम रही। एस.एस.एम मार्डन हाई स्कूल की छात्रा स्मृति द्वितीय रही। दयानन्द इंटरनैशनल स्कूल घरोटा की छात्रा अदिति शर्मा तृतीय रही। सुमित्रा देवी आर्य स्कूल की छात्रा चेतना को एवं एस.एस.एम. मार्डन हाई स्कूल की छात्रा मेघा को सांत्वना पुरस्कार दिये गये। अंत में स्वामी जी महाराज ने महात्मा हंसराज जी के जीवन पर चर्चा करते हुये कहा कि महात्मा जी की बदौलत ही आज हिन्दू जाति जीवित है। आज सारे भारत वर्ष में डी.ए.वी. संस्थाओं का जाल बिछा हुआ है। सब महात्मा हंसराज जी की ही देन है। हमें उनके जीवन से प्रेरणा लेकर आर्य समाज के कार्यों को और गति प्रदान करनी चाहिये। इस अवसर पर आर्य समाज के प्रधान रघुनाथ सिंह शास्त्री, सचिव रमेश महाजन, कोषाध्यक्ष राजेश महाजन, अरुण विज, वेद प्रकाश औहरी, मनोहन सैन औहरी, बाल किशन, सरदारी लाल, यतीन्द्र शास्त्री, रमेश शास्त्री, निवास शास्त्री, मुस्कान किशोर शास्त्री, डा. राजन हांडा, श्रीमती अनुराधा, अंजलि रामपाल, प्रिंसीपल जे.के. नायर, प्रेम सैनी, प्रिंसीपल गंधर्व राज महाजन, पंडित कैलाश चन्द शर्मा एवं बहुत से गणमान्य व्यक्ति उपस्थित थे। जलपान के पश्चात कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

-रमेश महाजन सचिव

माउंट आबू जाने वाले आर्यजनों के सम्मान में भजन संध्या का आयोजन

आर्य समाज दाल बाजार (महर्षि दयानन्द बाजार) लुधियाना की अगुवाई में लुधियाना से गुरुकुल माउंट आबू यात्रा 24 मई से लेकर 29 मई होगी जिसका पहला पड़ाव ऋषि उद्यान अजमेर है। इस अवसर पर यात्रा पर जाने वाले आर्यजनों को विशेष रूप से सम्मानित किया गया। यह यात्रा 24 मई को लुधियाना से शुरू होगी।

आर्य समाज दाल बाजार (महर्षि दयानन्द बाजार) लुधियाना के महामंत्री आर्य सुरेन्द्र टंडन जी की अगुवाई में लुधियाना से गुरुकुल माउंट आबू यात्रा 24 मई से लेकर 29 मई होगी जिसका पहला पड़ाव ऋषि उद्यान अजमेर है।

रविवार सायं आर्य समाज दाल बाजार (महर्षि दयानन्द बाजार) लुधियाना से जाने वाले लगभग 70 से ज्यादा आर्यजनों का पगड़ी और अंगवस्त्र देकर उन आर्यजनों को सम्मानित किया गया जो इस यात्रा में भाग ले रहे हैं। इन आर्यजनों के सम्मान में भजन संध्या का विशाल आयोजन रविवार सायं 5 बजे से 7 बजे तक किया गया जिसमें भारी संख्या में आर्यजनों ने बढ़ चढ़ कर भाग लिया। सबसे पहले स्त्री आर्य समाज दाल बाजार (महर्षि दयानन्द बाजार) लुधियाना की माताओं किरण टंडन जी, बाला गम्भीर जी, किरण कपूर जी, परवीन जी ने बहुत सुन्दर भजन प्रस्तुत किये। इसके पश्चात आर्य समाज दाल बाजार (महर्षि दयानन्द बाजार) के उप प्रधान रमाकांन्त महाजन जी, कार्यकर्त्ता प्रधान श्री संजीव चड्ढा जी, कोषाध्यक्ष सुभाष अबरोल जी ने सुन्दर सुन्दर भजन प्रस्तुत किये। बृजेन्द्र मोहन भंडारी जी ने रास्ते में यात्रा के बारे में आर्यजनों को जानकारी दी और श्रवण बत्रा जी ने और आर्य समाज दाल बाजार लुधियाना के पुरोहित आचार्य अरविन्द शास्त्री जी ने सब को आशीर्वाद दिया और प्रधान श्री सतपाल नारंग जी ने सभी आए हुये आर्यजनों का धन्यवाद किया। अन्त में सभी आर्यजनों के लिये विशेष ऋषिलंगर का आयोजन किया गया। कार्यक्रम में पधारे जिला आर्य समाज के महामंत्री डा. विजय सरीन जी, सुरेन्द्र चड़ढा जी, परवीन पाहवा जी, अजय महाजन जी, संत कुमार जी, इन्द्रवीर मल्होत्रा जी, डाक्टर श्याम सुन्दर जी, डाक्टर भनोट जी, माता सुलक्षण सूद जी, रेणु टंडन जी, पुष्प खुल्लर जी, वेद प्रिया चावला जी, रमन मल्होत्रा जी, ओम प्रिय चावला जी, कपिल नारंग जी, अनिल आर्य जी, रेणु वधवा जी, यशपाल कपूर जी आदि सभी आर्यजनों ने बढ़ चढ़ कर भाग लिया। माता सुलक्षणा सूद जी का विशेष योगदान रहा। सभी वैदिक यात्रा पर जाने वाले आर्यजनों को हार्दिक बधाई।

– आर्य सुमित टंडन

पारिवारिक सत्संग का आयोजन

आर्य समाज वेद मंदिर भार्गव नगर जालन्धर द्वारा दिनांक 20 मई 2018 को आर्य समाज के संरक्षक श्री सरदारी लाल जी आर्य के निवास स्थान न्यू सुराजगंज जालन्धर में पारिवारिक सत्संग का आयोजन किया गया। इस अवसर पर श्री सुदेश कुमार जी एवं श्री सरदारी लाल जी हवन यज्ञ पर बैठे हुये जबकि चित्र दो में परिवार को आशीर्वाद देते हुये महात्मा विशोकायति जी, पं. सुरेश शास्त्री जी, पंडित मनोहर लाल जी आर्य एवं अन्य आर्यजन।

आर्य समाज वेद मन्दिर भार्गव नगर जालन्धर के द्वारा दिनांक 20 मई 2018 रविवार को पारिवारिक सत्संग का आयोजन आर्य समाज के संरक्षक श्री सरदारी लाल जी आर्यरत्न के निवास स्थान न्यू सुराजगंज जालन्धर में किया गया। प्रात: 9:00 बजे यज्ञ प्रारम्भ हुआ जिसमें श्री सरदारी लाल जी आर्यरत्न, श्री सुदेश कुमार जी एवं उनके पूरे परिवार ने यजमान बनकर यज्ञ सम्पन्न कराया। यज्ञ के ब्रह्मा पं. मनोहर लाल जी आर्य एवं महात्मा विशोकायति जी हिसार थे। यज्ञ के पश्चात सभी विद्वानों ने यजमान परिवार को आशीर्वाद प्रदान किया। यज्ञ के पश्चात आर्य समाज वेद मन्दिर भार्गव नगर की भजन मण्ड़ली माता सत्या एवं कान्ता जी ने प्रभु भक्ति का सुन्दर भजन सुनाकर ईश्वर महिमा और स्वामी दयानन्द जी का वर्णन किया। बस्ती वावा खेल से श्री सुरिन्द्र कुमार जी ने महर्षि दयानन्द एवं ईश्वर भक्ति के मधुर भजन सुनाकर सभी को भाव–भिवोर कर दिया। इसके पश्चात श्री सुरेश शास्त्री जी एवं महात्मा विशोकायति जी का सुन्दर प्रवचन हुआ।

अपने प्रवचन में उन्होंने परिवार को श्रेष्ठ एवं धार्मिक बनाने की प्रेरणा दी। इस अवसर पर जालन्धर की सभी आर्य समाजों के अधिकारियों, सदस्यों एवं अन्य श्रद्धालुओं ने बढ़–चढ़ कर भाग लिया। विशेष रूप से विधायक श्री राजिन्द्र बेरी, श्री बावा हैनरी, मेयर जगदीश राजा, श्री मोहिन्द्र भगत, श्री राज कुमार, श्री सुधीर शर्मा कोषाध्यक्ष आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, श्री अशोक परूथी रजिस्ट्रार आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब आदि ने भाग लिया। श्री सरदारी लाल जी आर्यरत्न ने अपने परिवार की ओर से सभी अतिथियों का हार्दिक धन्यवाद किया। आर्य समाज वेद मन्दिर भार्गव नगर के प्रधान श्री राज कुमार, मन्त्री श्री बिशम्बर कुमार एवं अन्य सभी अधिकारियों ने बढ़–चढ़ कर भाग लिया। कार्यक्रम के पश्चात सभी ने जलपान ग्रहण किया।

बिशम्बर कुमार मन्त्री आर्य समाज वेद मन्दिर भार्गव नगर

श्री प्रेम भारद्वाज महामन्त्री, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा गायत्री प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ। **E-mail: apspunjab2010@gmail.com, www.aryapratinidhisabha.org**
आर्य मर्यादा में प्रकाशित सारी लेखन सामग्री से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं। प्रत्येक विवाद के लिए न्याय क्षेत्र जालन्धर होगा।